THE ECONOMIC TIMES

Date: 16-02-18

Learn, don't just reel, from the PNB fraud

ET Editorials

The Rs 11,300-crore fraud at Punjab National Bank (PNB) comes as a shocker. It should serve as an eye-opener as well. PNB claims that two staffers executed the scam over seven years, issuing fraudulent letters of undertaking that allowed a clutch of diamond companies, owned by Nirav Modi and associated with Mehul Choksi-owned Gitanjali Gems, to borrow foreign currency from overseas branches of mostly other Indian banks. These overseas loans were made on the strength of letters of undertaking from PNB and some were routed through PNB's overseas accounts with other banks, called Nostro accounts. This makes it difficult for PNB to wriggle out of responsibility for the loans not repaid. The RBI has done well to ask PNB to bear the liability, so that the damage is localised and not generalised across the banks involved.

However, while the fraud at PNB has come to light, there is no guarantee that there are no similar scams smouldering below the surface at other banks. If it is possible for some employees to run up such huge contingent liabilities for PNB without these being reflected in the bank's accounts, it is not just a sad reflection of how the bank has organised its accounts and configured its software; it is also a warning that other banks could be similarly vulnerable. That the practice could continue for seven years without being detected is a black mark against the bank's internal and external audit. It reflects poorly on the capability of the banking regulator, RBI, as well. Clearly, the RBI lacks the wherewithal to match one bank's reported claims against another bank with that bank's reported statement of liabilities. This flaw must be removed.Nirav Modi has proved himself an accomplished businessman, capable of scale, quality and branding. Gitanjali Gems, too, is an established business. They have assets that can be seized, if needed. Significant amounts of the outstanding loans could well be realised. Every effort should be made to do that, alongside criminal investigation into fraud. Banks' accounts and systems must be upgraded as well.

THE TIMES OF INDIA

Date: 16-02-18

Money for free

Public sector banks are in governance collapse, government needs to step aside

TOI Editorials

Indian public sector bank (PSB) woes continue to multiply. Punjab National Bank's management announced that they have unearthed fraudulent transactions of around Rs 11,400 crore. The fraud allegedly occurred when employees sidestepped the bank's formal operating system to help a borrower – billionaire diamond merchant Nirav Modi – raise funds through letters of undertaking. The problem is not limited to PNB as other Indian banks lent money based on the fraudulent letters. Finance ministry and RBI will now have to unravel the mess to fix liability and accountability.

PNB's announcement should not come as a surprise. Last June, RBI warned about the increasing trend of frauds in banks. Between 2012-13 and 2016-17 and prior to the PNB fraud, Indian banks recorded frauds of Rs 69,770 crore. The PNB fraud itself is more than twice the amount government planned to infuse as fresh capital. An incident of this magnitude needs to be seriously investigated by enforcement agencies and everyone responsible, no matter how high, punished.

According to RBI, almost all corporate loan cases "get seasoned" for two to three years as bad loans before they are reported as fraud. This scale of systemic misreporting of problems reflects poorly on the regulatory environment. The political course this scandal is going to take is predictable. Having been set upon by BJP for corruption and 'crony capitalism' for long, Congress is now bound to mine the presence of Prime Minister Narendra Modi with principal alleged fraudster Nirav Modi, in a group photo with Indian businessmen at the recently held Davos summit, and return the compliment by projecting Nirav Modi as NDA's Vijay Mallya.

But beyond the question of intentions and customary 'tu tu main main' of Indian politics, there is a deeper structural issue at stake. Fraud related issues are preponderant in PSBs; even in the case of bad loans PSBs are worse off. The primary reason for this is the ownership structure. As long as government holds a majority stake and exercises control through it, systemic flaws are unlikely to be rectified. This is because government has recourse to the hapless taxpayer's resources, readily available to paper over any problem. If the government really wants to tackle corruption and crony capitalism, it must prepare a roadmap to privatise the banking sector. That is the only way we will see real governance reform for banks.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 16-02-18

तंत्र की नाकामी

संपादकीय

सरकारी बैंक पंजाब नैशनल बैंक (पीएनबी) ने स्वीकार किया है कि उसकी मुंबई की एक शाखा में 114 अरब रुपये की धोखाधड़ी हुई है। फर्जी लेटर ऑफ अंडरटेकिंग (एलओयू) को आधार बनाकर विदेशों में अन्य भारतीय बैंकों की शाखाओं से डॉलर में रकम स्थानांतरित की गई। ये एलओयू नीरव मोदी और उनके रिश्तेदारों की रत्न एवं आभूषण कंपनियों के खातों के लिए जारी किए गए थे। इस मामले में पहली प्राथमिकी दर्ज होने के पहले ही जनवरी में मोदी भारत छोड़ गए। जाहिर सी बात है इस कथित घोटाले का असली स्वरूप गहन जांच के बाद ही सामने आ सकेगा। इस मामले में नतीजों पर पहुंचने की कोई हड़बड़ी नहीं होनी चाहिए।

बहरहाल, यह स्पष्ट है कि देश के बैंकिंग क्षेत्र की कमजोरी एक बार फिर उजागर हो गई है। देश के बैंकों, खासतौर पर सरकारी बैंकों में जोखिम प्रबंधन की समुचित व्यवस्था नहीं है। यह समस्या केवल पीएनबी तक सीमित नहीं है। हालांकि यह बैंक 2013 में भी हीरे का कारोबार करने वाली कंपनी विनसम से जुड़े ऐसे ही घोटाले में फंसा था। हीरे के कारोबार में बहुत बड़ी राशि विभिन्न देशों के बीच स्थानांतरित होती है। ऐसे में यह कारोबार स्वाभाविक तौर पर धोखाधड़ी और धनशोधन के लिए जांच के दायरे में रहता है। यह चिंता की बात है कि कुछ बैंक इस जोखिम भरे कारोबार को लेकर जरूरी सतर्कता नहीं बरतते। उदाहरण के लिए इस मामले में पीएनबी के साझेदार बैंकों की विदेशी शाखाओं ने एलओयू जारी किए। ये एलओयू नियामकीय अनुशंसा के तहत मान्य माल भेजने के बाद 90 दिन की सीमा से ज्यादा के लिए जारी किए गए। उन कई बैंकों ने भी गलती की है जिन्होंने बिना पीएनबी के साथ उचित जांच परख किए हजारों करोड़ रुपये की राशि जारी कर दी। इस राशि की गारंटी पीएनबी को देनी थी।

यह सवाल बरकरार है कि आखिर केवल दो कर्मचारी बैंक के भीतरी स्विफ्ट सिस्टम और अनाधिकारिक पत्रों का इस्तेमाल करते हुए जोखिम का पता लगाने वाली हर व्यवस्था को धता बताने में कैसे कामयाब रहे? आखिर धोखाधड़ी पर आधारित यह व्यवस्था इतने लंबे समय तक कामयाब कैसे होती रही? यह सिलसिला पूरे सात साल तक चलता रहा। अगर किसी व्यवस्था के साथ छेड़छाड़ करना इतना आसान हो या ऐसी अनदेखी संभव हो तो क्या यह स्वीकार्य होना चाहिए था? बैंकों के बीच ऐसा सहज तालमेल यह भी बताता है कि सुधार रहित और व्यापक तौर पर राष्ट्रीयकृत बैंकों में किस कदर जोखिम मौजूद है। निजी क्षेत्र हो या सरकारी लेकिन जमाकर्ताओं के पैसे का गंवाया जाना प्रबंधकीय जवाबदेही है। जिन लोगों की वजह से यह गड़बड़ी हुई है उन सभी को उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए।निजी बैंक जवाबदेही के मोर्चे पर कमजोर रहे हैं लेकिन सरकारी क्षेत्र की स्थिति तो और खराब रही है। उनके संचालन के ढांचे को देखकर इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं होता है। पीएनबी मामला दिखाता है कि सरकारी बैंकिंग क्षेत्र किस कदर दिक्कतों और व्यवस्थागत नाकामी का शिकार है। उनमें निगरानी और प्रक्रियाओं का पालन भी सही ढंग से नहीं हो रहा है। यह सारा कुछ बहुत व्यापक स्तर तक पनप चुका है। भारतीय रिजर्व बैंक लंबे समय से बैंकिंग क्षेत्र को चेतावनी देता रहा है कि उच्च मूल्य के धोखाधड़ी भरे लेनदेन गंभीर चिंता का विषय बन चुके हैं। नियामक जटिल वित्तीय लेनदेन को लेकर नियम कड़े करता रहा है। उसने निगरानी बढ़ाई और बैंकों के बोर्डों को ऐसे खतरों को लेकर समय-समय पर अवगत कराता रहा है। जब तक उनमें प्रमुख हिस्सेदार यानी सरकार जवाबदेही नहीं डालती है तब तक समय-समय पर ऐसे मामले सामने आते ही रहेंगे।

Date:16-02-18

कृषि निर्यात से आय में हो सकती है बढ़ोतरी

नीलकंठ मिश्रा

कृषि क्षेत्र का निर्यात ही एकमात्र ऐसा उपाय है जिसकी मदद से बिना मुद्रास्फीति बढ़े खेती से जुड़ी आय बढ़ाई जा सकती है। इस बारे में विस्तार से बता रहे हैं नीलकंठ मिश्रा

देश में व्यय के संकेतक बताते हैं कि अर्थव्यवस्था में दो तरह की गतियां नजर आ रही हैं। पहला, ऊपरी स्तर की खपत में स्थिरता है: कारों और उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री बढ़ रही है, विमान यात्रियों की तादाद इतनी तेजी से बढ़ रही है कि मुंबई और दिल्ली हवाई अड्डों पर रनवे खाली नहीं रहते और बागडोगरा जैसे दूरदराज हवाई अड्डों पर बैठने की जगह नहीं मिलती। बहरहाल, व्यापक स्तर पर खपत के संकेतक कमजोर हैं। साल भर की कमजोरी के बाद सीमेंट और इस्पात क्षेत्र मजबूत हुआ है लेकिन साबुन, शैंपू आदि उपभोक्ता वस्तुओं के कारोबार में मंदी बरकरार है। इसका सबसे सटीक उदाहरण खाद्य कीमतें हैं। आधा हिंदुस्तान खाद्यान्न उत्पादक और शेष आधा उपभोक्ता है। वर्ष 2012 के रोजगार सर्वेक्षण के मुताबिक 46 फीसदी रोजगार कृषि क्षेत्र में है।

खाद्य कीमतें उपभोक्ता से उत्पादक को स्थानांतरित होती हैं। खाद्य पदार्थों की उच्च कीमतों का अर्थ है अमीरों से गरीबों की ओर अधिक धन का हस्तांतरण। देश में कृषि क्षेत्र के उत्पादन का मूल्य करीब 25 लाख करोड़ रुपये है। अगर यह मान लिया जाए कि इसका 60 फीसदी यानी 15 लाख करोड़ रुपये का उपभोग ऊपरी आधा वर्ग कर लेता है तो कीमतों में 10 फीसदी बढ़ोतरी का अर्थ यह हुआ कि 1.5 लाख करोड़ रुपये की राशि कृषि क्षेत्र में आएगी। अगर खाद्य महंगाई में महज 2 फीसदी गिरावट आती है तो 30,000 करोड़ रुपये हस्तांतरित होंगे। शीर्ष आधे हिस्से में एकत्रित 1.2 लाख करोड़ रुपये की राशि बताती है कि वित्तीय बचत में इजाफा हो रहा है और खपत में भी। इस हस्तांतरण का अभाव भी कमजोर व्यापक खपत की वजह हो सकता है।

खाद्य महंगाई में धीमापन प्रमुख तौर पर अतिरिक्त आपूर्ति के कारण आया। कृषि उत्पादकता में सुधार (सड़क, फोन, बिजली और ऋण की उपलब्धता के चलते) के कारण आपूर्ति बढ़ रही है जबकि खाद्य पदार्थों की मांग उतनी तेजी से नहीं बढ़ रही है। राजकोषीय अनुशासन ने भी इसमें मदद की है। हालांकि समेकित घाटा ज्यादा होने के कारण चिंता बरकरार है। जीडीपी के 6 फीसदी के बराबर समेकित घाटे के साथ भारत दुनिया में सर्वाधिक घाटे के प्रतिशत वाले देशों में शुमार है लेकिन फिर भी यह चार दशकों का सबसे निचला स्तर है।भारत में ऐसी स्थितियां दुर्लभ हैं। सन 1960 के दशक में जहां कृषि उत्पादन में सालाना आर्थिक वृद्धि 2.5 फीसदी थी, वहीं औसत सालाना मूल्य वृद्धि 7.5 फीसदी रही। ऐसे में अपेक्षाकृत कमजोर उत्पादन वृद्धि के बावजूद कृषि की समेकित आय 10 फीसदी सालाना की दर से बढ़ती रही। सन 1951 के बाद से कृषि क्षेत्र के कर्मचारियों की संख्या में लगातार बढ़ोतरी की एक वजह यह भी रही है। खाद्य कीमतों में स्थायी उच्च वृद्धि का भी अर्थव्यवस्था पर बुरा असर होता है। मसलन मुद्रास्फीति, उच्च ब्याज दर और मुद्रा की कमजोरी आदि इसके उदाहरण हैं।

परंतु खाद्य मूल्य महंगाई के भी अपने प्रभाव हैं। अगर आधी श्रम शक्ति की आय वृद्घि की दर धीमी होगी तो उनकी खपत भी कमजोर होगी। उदाहरण के लिए वे अपने घरों में नए कमरे नहीं बनाएंगे या कच्चे मकान से पक्के मकान का रुख नहीं करेंगे। वित्तीय बचत को ऊपरी आधे वर्ग से नीचे के लोगों की खपत बढ़ाने में प्रयोग करने की कोई प्रभावी व्यवस्था हमारे पास नहीं है। इस सिलसिले में न तो ऋण की व्यवस्था है और न ही वैकल्पिक रोजगारों की। इसके राजनीतिक निहितार्थ भी हैं। हम हाल में किसानों के विरोध प्रदर्शन में यह देख चुके हैं। आगामी आम चुनाव करीब हैं और सरकार को इनमें से कुछ चिंताओं को दूर करना होगा।

खासतौर पर यह देखते हुए कि खाद्य कीमतों के चलते ऐसे हस्तांतरण तय हो सकते हैं जो सरकार द्वारा तय किसी भी लक्ष्य से बड़े हों। साफ कहें तो अमीरों से संपत्ति को गरीबों की ओर स्थानांतरित करने के दो तरीके हैं- कर बढ़ाना और फिर विभिन्न सरकारी योजनाओं की मदद से, प्रत्यक्ष हस्तांतरण द्वारा या खाद्य कीमतें बढ़ाकर। पहली स्थिति में फंड का प्रवाह सरकार के माध्यम से होता है और दूसरी स्थिति में कृषि बाजार के जरिये। अगर फंड होता तो भी सरकार के लिए अरबों रुपये व्यय करना आसान नहीं होता। शायद यह बाधा भी एक वजह है कि केंद्र सरकार ने आने वाले वर्ष के व्यय बजट में केवल 9 फीसदी इजाफे की बात कही है। यह नॉमिनल जीडीपी वृद्धि दर से भी कम है और सरकारी व्यय और जीडीपी अनुपात एकदम निचले स्तर पर है।

सरकार खाद्य कीमतें बढ़ाने का प्रयास कर रही है। बजट भाषण में न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) को ऐसे तय करने की बात कही गई है ताकि किसानों को उपज लागत से कम से कम 50 फीसदी अधिक दाम मिलें। इस दिशा में प्याज निर्यात पर न्यूनतम निर्यात मूल्य प्रतिबंध समाप्त कर दिया गया है और चीनी के आयात शुल्क में इजाफा किया गया है ताकि घरेलू उद्योग का बचाव है। ये कदम कितने प्रभावी साबित होंगे इस पर बहस हो सकती है। जैसा कि कई लोगों ने देखा भी होगा, 50 फीसदी का मार्जिन शायद केवल धान का मूल्य बढ़ाने में मददगार हो क्योंकि गेहूं, तुअर दाल और चीनी जैसी अन्य प्रमुख उपज का एमएसपी पहले ही तय सीमा से ऊपर है। कुल कृषि उत्पादन में चावल की हिस्सेदारी 10 फीसदी से भी कम है और कुल उत्पादित चावल में से केवल एक तिहाई ही सरकार खरीदती है। इससे एमएसपी का प्रभाव सीमित हो जाता है। बीते कुछ सालों में चावल उत्पादन 11 करोड़ टन का स्तर पार कर चुका है और खुदरा कीमतें एमएसपी से ऊपर निकल गई हैं। अत्यधिक आपूर्ति वाली जिंसों की कीमतों को संभालना मुश्किल है।

प्याज पर निर्यात प्रतिबंध समाप्त करने से कीमतों में उछाल आई लेकिन बढिय़ा उत्पादन और सीमित निर्यात संभावनाओं के कारण व्यापक असर देखने को नहीं मिला। लाखों कृषि श्रमिकों को यही सलाह दी जाती है कि वे कौशल विकास करके गैर कृषि रोजगार अपनाएं। यहां अंतिम लक्ष्य तो एकदम स्पष्ट है लेकिन राह स्पष्ट नहीं है। ऐसे में कृषि निर्यात बढ़ाना ही एकमात्र स्थायी हल है जिसके जरिये बिना महंगाई के कृषि क्षेत्र और राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी की जा सकती है। घरेलू क्षेत्र के लिए खाद्य प्रसंस्करण और निर्यात की मांग से भी रोजगार के अवसर उत्पन्न हो सकते हैं। आय में ऐसी बढ़ोतरी से विनिर्मित वस्तुओं की मांग भी बढ़ेगी। इससे विनिर्माण को बहुप्रतीक्षित गति मिलेगी। हाल के महीनों में कृषि निर्यात को लेकर सरकार की प्राथमिकताओं में बदलाव आया है जो काबिले तारीफ है। हालांकि इसका प्रभाव नजर आने में कुछ समय लग सकता है।

नईदुनिया

Date: 16-02-18

घोटालेबाजी का तंत्र

संपादकीय

देश के दूसरे सबसे बड़े बैंक पंजाब नेशनल बैंक में 11 हजार करोड़ रुपये की धोखाधड़ी पर सरकार ने सख्त कार्रवाई करने और पूरी रकम वसूलने का जो आश्वासन दिया उसे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। उसे अपने इस आश्वासन पर हार हाल में खरे उतरना होगा। इस धोखाधड़ी को अंजाम देने वाले नीरव मोदी के खिलाफ न केवल कठोर कार्रवाई होनी चाहिए, बल्कि वह होती हुई दिखनी भी चाहिए। इस क्रम में इसकी भी जांच होनी चाहिए कि घोटाला उजागर होने के चंद दिन पहले ही वह देश से बाहर जाने में कैसे सफल रहा? कहीं किसी ने उसे आगाह तो नहीं किया? जो भी हो, यह बेहद खराब बात है कि पहले तमाम बैंकों को चूना लगाने वाले विजय माल्या देश से बाहर निकल गए और सरकार कुछ नहीं कर सकी और अब पंजाब नेशनल बैंक को लूटने वाला नीरव मोदी। नीरव मोदी की कारगुजारी सामने आने के बाद मोदी सरकार पर विपक्षी दलों के हमले स्वाभाविक हैं। नि:संदेह विपक्ष को तिल का ताड़ बनाने से बचना चाहिए, लेकिन सरकार को यह समझना होगा कि उसके सामने केवल विपक्ष को ही जवाब देने की चुनौती नहीं है। इसके साथ ही उसके समक्ष जनता को भी यह भरोसा दिलाने की चुनौती है कि फंसे कर्जों के कारण पहले से ही समस्याग्रस्त बैंकों के कामकाज को सचमुच दुरुस्त किया जाएगा। इस मामले में बैंकों को केवल कुछ और निर्देश जारी करने से काम चलने वाला नहीं है, क्योंकि अब इसमें कोई संशय नहीं कि बैंकिंग व्यवस्था को दुरुस्त करने संबंधी रिजर्व बैंक के नियमों और निर्देशों की अनदेखी हो रही है।

सच तो यह है कि अगर पंजाब नेशनल बैंक तय नियमों के हिसाब से काम कर रहा होता और उसका निगरानी तंत्र तनिक भी सजग होता तो नीरव मोदी बैंक को खोखला करने का काम कर ही नहीं सकता था। क्या यह अजीब नहीं कि नीरव मोदी के गोरखधंधे की शुरुआत 2011 में हुई, लेकिन उसे करीब सात साल बाद पकड़ा जा सका? आखिर बैंक ने समय रहते इसकी परवाह क्यों नहीं की कि नीरव मोदी सैकड़ों करोड़ों की रकम उधार लिए जा रहा है और उसे चुकाने का नाम नहीं ले रहा है? क्या यह एक किस्म की अंधेरगर्दी नहीं कि पंजाब नेशनल बैंक के चुनिंदा अधिकारी निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन करके नीरव मोदी के मन की मुराद पूरी करते रहे और बैंकिंग तंत्र को इसकी भनक तक नहीं लगी? चूंकि फिलहाल इस सवाल का जवाब देने वाला कोई नहीं इसलिए यही लगता है कि बैंकिंग व्यवस्था ऐसे मनमाने तरीके से चल रही है जो घोटालेबाजों को ज्यादा रास आ रही है। हैरत नहीं कि सभी बैंकों की गहन छानबीन की जाए तो कई और नीरव मोदी निकल आएं। इसकी आशंका इसलिए भी है, क्योंकि यह स्पष्ट हो रहा है कि बैंकों के ऑडिट के नाम पर खानापूरी ही होती है। क्या रिजर्व बैंक अथवा वित्त मंत्रालय में कोई यह देखने वाला नहीं कि बैंक धोखाधड़ी रोकने के लिए समय-समय पर जारी निर्देशों और प्रक्रियाओं का पालन कर रहे हैं या नहीं? घोटाले पकडऩे से ज्यादा जरूरी यह है कि उन्हें होने ही न दिया जाए।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 15-02-18

महाघोटाला

संपादकीय

विजय माल्या के वित्तीय घोटाले से जिनकी **आंखें** न खुली हों, उनकी अब खुल जानी चाहिए। पंजाब नेशनल बैंक में हुए घोटाले की ताजा खबर हैरान करने वाली भी है और परेशान करने वाली भी। मुंबई में बैंक की सिर्फ एक शाखा में 11,300 करोड़ रुपये का घोटाला यह बताता है कि हमारा बैंकिंग क्षेत्र अभी भी इतने ढीले-ढाले ढंग से चल रहा है कि उसमें बहुत आसानी से इतना बड़ा घोटाला किया जा सकता है। घोटाला कितना बड़ा है, इसे सिर्फ इसी आंकड़े से समझा जा सकता है कि पिछले साल बैंक **की** कार्यशील आमदनी महज 12,216 करोड़ रुपये थी। यानी सिर्फ एक घपले ने इसका लगभग पूरी तरह ही सफाया कर दिया। और जहां तक मुनाफे की बात है, तो बैंक पहले ही घाटे में चल रहा है।

जाहिर है, यह घाटा अब और बढ़ेगा। इस पूरे घपले से बैंक को कितनी चपत लगी है, यह बैंक ने अभी **स्पष्ट** नहीं किया है। जो चीज सबसे ज्यादा हैरान करती है, वह है एक ही बैंक शाखा से इतनी बड़ी रकम की हेरा-फेरी हो जाना। यह **ठीक** है कि मुंबई देश की आर्थिक राजधानी है और देश के सबसे बड़े वित्तीय लेन-देन वहीं होते हैं, फिर भी एक ही शाखा से इतनी बड़ी रकम का पार हो जाना ऐसी बात है, जो आसानी से हजम नहीं होती। अभी यह भी **नहीं** पता कि यह पूरा घपला एकबारगी हुआ या यह **पिछले** कुछ समय से चल रही घपले की प्रक्रिया का कुल योग है। दोनों ही तरह से यह बताता है कि हमारी बैंकिंग व्यवस्था में सब कुछ चाक-चौबंद नहीं है।खबर से सिर्फ इतना ही पता लगा है कि यह मामला कुछ **कंपनियों** को दिए गए एडवांस का है। तकरीबन एक साल पहले बेंगलुरु के भारतीय प्रबंधन संस्थान ने बैंक धोखाधड़ी के मामलों का **अध्ययन** किया था। इस अध्ययन में पाया गया था कि बैंकों **में** सबसे ज्यादा धोखाधड़ी इसी एडवांस से होती है। इसे ही बैंकों के डूब गए **कर्ज** यानी एनपीए का सबसे बड़ा कारण बताया गया था। हम यह भी जानते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्रों के बैंकों का एनपीए लगातार बढ़ रहा है। लेकिन जब भी एनपीए की बात आती है, यह मान लिया जाता है कि कुछ लेने वाले हैं, जो बैंकों का पैसा लेकर बैठ गए हैं और वापस नहीं कर रहे। यह बात अक्सर नजरअंदाज हो जाती है कि इसमें से कितना बैंक के अपने तंत्र की खामियों की वजह से हो रहा है। ऐसी बातें तभी सामने आती हैं, जब रकम बहुत बड़ी हो, जैसे विजय माल्या के मामले में थी, या फिर पंजाब नेशनल बैंक के ताजा घोटाले के मामले में है। यानी सिर्फ तब, जब घोटाले की प्रकृति पर परदा डालना संभव न हो।

हमारे लिए यह चिंता का विषय इसलिए भी है कि पंजाब नेशनल बैंक एक सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक है। यह ठीक है कि पिछले कुछ समय में पूंजी बाजारों से काफी पूंजी हासिल की गई है, लेकिन इसका मूल आधार तो वही पूंजी है, जो करदाताओं की मेहनत की कमाई से बैंक के पास पहुंची है। यहां यह भी बता दें **कि** ऐसे घपले-घोटाले अपने देश में सार्वजनिक क्षेत्र के **बैंकों** में ही सबसे ज्यादा होते हैं। भारतीय प्रबंधन संस्थान का अध्ययन भी बताता है कि हमारे देश में 83 प्रतिशत से ज्यादा बैंक घपले **सार्वजनिक** क्षेत्र के बैंकों में होते हैं। एडवांस से संबंधित घपलों के मामलों में **सार्वजनिक** क्षेत्र के बैंकों की हिस्सेदारी 87 प्रतिशत है। आम लोगों के पैसों के साथ इस तरह का व्यवहार किसी भी कीमत पर रोका ही जाना चाहिए।

Date: 15-02-18

इस आधार को चाहिए नया विस्तार

नंदन नीलेकणि, चेयरमैन, इन्फोसिस

आधार इसलिए बनाया गया था, ताकि तमाम लोगों को एक अद्‌वितीय व डिजिटल पहचान दी जा सके। मगर आज खुद आधार की पहचान सवालों के घेरे में है। ऐसे कई लोग हैं, जो यह बताते नहीं थकते कि आधार एक बचत योजना है। अपने तर्कों में वे इसे एक अप्रभावी बचत योजना भी कहते हैं। चूंकि आधार-निर्माण की प्रक्रिया में मैं भी शामिल रहा हूं, इसलिए यह दावे से कह सकता हूं कि इसे हमने एक योजना के रूप में कभी नहीं देखा। इसे तो यूनिवर्सल डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर (सार्वभौमिक डिजिटल संरचना) के रूप में गढ़ा गया है।

इसी भ्रम के कारण, हम ऐसे विवादों में उलझे हुए हैं, जो दूसरे इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट में देखने को नहीं मिलते। क्या सरकार कभी भी हाईवे बनाने से महज इसलिए मना कर सकती है कि उसका इस्तेमाल चोर-उचक्के या तस्कर वगैरह भी कर सकते हैं? क्या कोई यह कह सकता है कि हमें राजमार्गों को तोड़ देना चाहिए, क्योंकि सभी के पास कार नहीं है? क्या कोई यह भी कह सकता है कि अगर सरकार कोई सड़क बना रही है, तो उस पर सिर्फ सरकारी गाड़ियां दौड़नी चाहिए? इन और ऐसे तमाम सवालों के जवाब 'नहीं' में ही होंगे। लिहाजा आधार को लेकर भी हमें मूल रूप से यही पूछना चाहिए कि क्या इस तरह का कोई सार्वभौमिक ढांचा लोगों के व्यापक हित में है अथवा नहीं? मेरी नजर में यह कई वजहों से लोगों के व्यापक हित में है।पहली, आधार वहां तक पहुंच व समावेशन का दायरा बढ़ाता है, जहां बाजार पारंपरिक तौर पर विफल साबित होता है। म्यूचुअल फंड का ही उदाहरण लें। जब तक आधार आधारित ई-केवाईसी लागू नहीं हुआ था, तब तक केवाईसी यानी अपने कस्टमर को पहचानने की भौतिक प्रक्रिया में लगभग 1,500 रुपये खर्च हो जाते थे। इस कारण पहले यही समझ थी कि कम से कम तीन लाख रुपये का निवेश करने वाले लोग ही इसके व्यावहारिक कस्टमर हैं। मगर आज हम हर जगह ये सुन सकते हैं कि 'म्यूचुअल फंड सही है'। क्या हमें इसके लिए ई-केवाईसी का शुक्रिया अदा नहीं करना चाहिए, जिसने इसमें निवेश की रकम कम कर दी? अब एसआईपी (सिस्टमेटिक इन्वेस्टमेंट प्लान) लोग 100 रुपये से भी शुरू कर सकते हैं। अकेले पिछले वर्ष छोटे शहरों से म्यूचुअल फंड में 46 फीसदी निवेश बढ़ा है और यह अब 41 खरब रुपये हो गया है। इससे यह भी जाहिर होता है कि हमारी निर्भरता विदेशी पूंजी पर घट रही है और घरेलू निवेशकों की संख्या प्रभावी तरीके से बढ़ रही है।

दूसरी, यह दुखद है कि जब भी कुलीन वर्ग निजी स्कूलों, स्वास्थ्य सेवाओं व परिवहन के सार्वजनिक ढांचे से अलग होता है, तो संबंधित सेवाएं प्रभावित हो जाती हैं। सिर्फ गरीबों के इस्तेमाल के लिए बने ढांचे को सुधारने के प्रयास बमुश्किल होते हैं। इसका कारण यह है कि वे अपने हक-हुकूक की आवाज बुलंद नहीं कर पाते। मगर सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित होने से सार्वजनिक सेवाएं मुहैया कराने वाली संस्थाएं इन्हीं लोगों के प्रति ज्यादा जिम्मेदार या जवाबदेह हो जाती हैं, क्योंकि सार्वभौमिक पहुंच लोगों को मुखर बनाती है।तीसरी, राज्य जब कभी सार्वजनिक वस्तुओं का उत्पादन बंद कर देता है, तो निजी क्षेत्र उस खालीपन को भरने के लिए आगे आता है। इस संदर्भ में डिजिटल पहचान को भी देखने की जरूरत है। आज ऐसी पहचान मुहैया कराने वाली कंपनियां वैश्विक स्तर पर दिग्गज कंपनियों में शुमार हैं। उनका कहा हुआ 'ऑब्जेटिव' (उद्‌देश्य) होता है कि 'आपसे बेहतर, आपको जानना'। आखिर क्यों, ताकि वे आपको विज्ञापन व उत्पाद बेच सकें। वास्तव में, यह कारोबार इतना ज्यादा फायदेमंद हो चुका है कि ऐसी कंपनियां दूसरी सेवाओं को सिर्फ क्रॉस-सब्सिडी (एक वर्ग से अधिक कीमत वसूलकर दूसरे वर्ग को सब्सिडी देना) ही नहीं देतीं, बल्कि वे मुफ्त में भी मुहैया कराती हैं। इस तरह, वे आपकी अधिक से अधिक जानकारियां हासिल करती हैं। इतना ही नहीं, ये आंकड़े भारत में रखे भी नहीं

जाते, और विदेशी सरकारों के लिए सुलभ होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारी निजी जानकारियों पर ही हमारा कोई हक नहीं रहता। हम यह भी तय नहीं कर सकते कि उसका कब और कहां इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

ऐसी सूरत में, मैं उन राजकीय संस्थानों पर ही भरोसा करूंगा, जिन पर न्यायिक व संसदीय नियंत्रण है। वे डाटा कारोबार में भी शामिल नहीं हैं। सर्वज्ञाता आईडी (पहचान) के उलट आधार महज एक मूक आईडी है। यह निजी कंपनियों को आपकी सहमति से ही जानकारियां देता है, वह भी सिर्फ जनसांख्यिकीय विवरण व आपकी तस्वीर। आधार आपकी पसंद-नापसंद जैसी नितांत निजी जानकारियां किसी से साझा नहीं करता।इसमें दो राय नहीं है कि आधार की गोपनीयता और सुरक्षा को लेकर हमें एक मजबूत नियंत्रण-तंत्र बनाना चाहिए। मगर सुरक्षा व गोपनीयता की जरूरत का मेरा यह तर्क आधार डाटा तक निजी कंपनियों की पहुंच के खिलाफ नहीं है। वास्तव में, यह सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित कराने की एक बड़ी वजह है। मेरी नजर में सार्वभौमिक पहुंच का मतलब सार्वभौमिक निगरानी भी है। निजी पहुंच को व्यवस्थित करने के लिए हम जिस तरह के लोकतांत्रिक नियंत्रण व संतुलन की व्यवस्था करेंगे, वह सरकारी कामकाज को भी व्यवस्थित करेगी।

ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि सार्वजनिक पूंजी से तैयार उन्नत तकनीकी ढांचा सार्वभौमिक उपयोग के लिए खोले जाने से अधिक बेहतर तरीके से उभरकर सामने आया हो। इससे पहले सिर्फ अमेरिकी हुकूमत ने जीपीएस जैसा कुछ बनाने के लिए जरूरी सैटेलाइट इन्फ्रास्ट्रक्चर विकसित किया था। जीपीएस मुख्यत: अमेरिकी सैनिकों के लिए बनाया गया था, लेकिन इसके रिसीवर काफी महंगे थे। मगर आज अमेरिकी सैनिक सस्ते जीपीएस रिसीवर इस्तेमाल करते हैं, क्योंकि अब इसे निजी कंपनियां तैयार कर रही हैं। ठीक यही कहानी इंटरनेट की भी है। कल्पना कीजिए, यदि डिफेंस एडवांस्ड रिसर्च प्रोजेक्ट एजेंसी (डीएआरपीए) इंटरनेट को महज सरकारी कामकाज तक सीमित रखती और इसका दरवाजा निजी कंपनियों के लिए नहीं खोलती, तो क्या होता? लिहाजा आज स्मार्टफोन पर उंगली रख देने भर से यदि आपके दरवाजे पर गाड़ी आकर खड़ी हो जाती है, तो याद रखिए कि ऐसा इसलिए मुमकिन हुआ है, क्योंकि सार्वजनिक पूंजी से तैयार डिजिटल ढांचा अब हर किसी की पहुंच में है।